५२. .मन जो सुमिरे राम को, राम बसे घट माहिं।
अब मन रामहि है रहा, शीश नवाऊँ काहि॥

शब्दार्थ—यह मन जो राम का स्मरण करता रहता था, वह राम तो घट (हृदय रूपी गुफा या घड़े) में ही बसे हुए मिले। अब (उनका साक्षात्कार करके अथवा आत्मबोध हो जाने पर) यह मन स्वयं ही राम हो गया (स्व और परम का अन्तर ही मिट गया। अहं ब्रह्मास्मि का बोध हो चुका)। तो अब किसे जाकर शीश नवाऊँ? (राम तो स्वयं मैं ही हूँ)।

५३. .जिव्हा तो तब ही भली, जो भजे हरि का नाम।
नहीं तो काट निकालिए, मुख में भला न चाम॥

शब्दार्थ एवं भावार्थ—जिह्वा का मुख में रहना तभी भला है (तभी उसकी सार्थकता है) जब वह प्रभु का नाम लेता रहे (शुभ, प्रिय, मधुर व शीतल बचन बोले, विनम्रता से बोले और भजन करे) अन्यथा (यदि कर्कश, कठोर रुख वाणी हो बोलनी है। असभ्य, अश्लील, अप्रिय, अशुभ वाणी ही बोलनी है। अपशब्द ही निकालने हैं या व्यर्थ की बकवास ही करनी है) तो जीभ को काट कर फेंक देना चाहिए। क्योंकि

सिर्फ चमड़ा मुँह में रखना ठीक नहीं है।

५४. . गुरु गोविन्द दोउ एक हैं, दूजा सब आकार।
आपा मेटें हरि भजैं, तब पावैं दीदार॥

शब्दार्थ—गुरु और गोविन्द दोनों एक हैं। दो तो आकार की भिन्नता के कारण प्रतीत होते हैं। अथवा इनके अलावा दूसरा जो कछ भी आकार/साकार है—सब माया है। अपने 'मैं' को मिटा कर प्रभु को भजा जाए, तभी गुरु के गोविन्द रूप का साक्षात्कार हो पाता है। (अन्यथा मनुष्य दोनों को भिन्न समझता रहता है। वास्तव में दोनों एकरूप हैं।)

५५. .जुआ चोरी मुखबिरी, ब्याज बिरानी नारि।
जो चाहे दीदार को, इतनी वस्तु निवारि॥

शब्दार्थ—जुआ खेलना, चोरी करना, मुखबिरी (इधर की उधर लगाना/जासूसी करना/दूसरों के दोष ढूंढना) करा और ब्याज लेना—इन वस्तुओं (कामों) को उस व्यक्ति